वैदिक ध्वनिविज्ञान में स्वरभक्ति का वैज्ञानिक मूल्यांकन

Usha Sharma

Department of Sanskrit, Banaras Hindu University, Varanasi-5

Abstract

Svarabhkti is a specific way of pronouncing consonant clusters of special type. Its literal meaning is 'to part with vowel' the word bhakti is derived from the root 'bhaj' means 'to separate. The phoneme' r' or '1' are not easy to pronounce when followed by consonants, short vowel is inserted while pronouncing consonant clusters in certain conditions to separate consonants. This is called 'Svarabbakti .In Pratishakhyas Svarabhakli means 'a part of vowel'. Short vowel part is called in one utter at the time. Svarabhakti is uttered in the half (1/2) or one fourth (1/4) of the time taken to utter a vowel sound. Hence it is named as Svarabhakti (Vowel - part) According to 'Uvat', the commentator of 'RK-Pratishakya', Svarabhakti is a type of vowel Sound- स्वरभक्ति: स्वरप्रकार इत्यर्थ: In the 'Tribhasyaratna' a commentary on 'Krishna' Yajurveda - pratishakya' Svarabhakli means the part of vowel sound. As Ref (consonants) and the vowel ri (ऋ) (Vowel sound) possess some similarity in their manner of as articulation so here, Svarabhati is a part of vowel sound ri (ऋ) According to Pratishakyas a short vowel is inserted in pronunciation of consonant 'r' Pratishakhya says when consonant r is preceded by a vowel and followed by a consonant a very short vowel is inserted between r and consonants. This very short vowel sound is turned as Svarabhakti. This Svarabhakti separater 'Ref (r) and consonants which smoothers its articulation. For example- (यदद्य कर्हि कर्हि चित्). In the example pade 'Karhi' in Ref (r) is proceeded by (a) vowel) part and followed by 'h' consonant. It is difficult to pronounce. So every short vowel resembling to vowel sound r is pronounced after so the कर्हि pronounced कर (ऋ) हि. This bit of short vowel called Svarabhakti but this change is not used in written form on the texts. According to 'Krisha Yajurveda Pratishakhya' Svarabhakti occurs only when 'Ref is followed by spirahant (श ष स ह). In modem linguistics Svarabhakli has a wide meaning.

'स्वरभक्ति' संयुक्त व्यञ्जनों का एक ऐसा उच्चारण - वैशिष्ट्य है जो वैदिक ध्वनि वैज्ञानिकों के सूक्ष्म चिन्तन की पराकाष्ठा को प्रदर्शित करता है। कहीं-कहीं संयुक्त व्यञ्जनों के उच्चारण में जिह्वा को अत्यधिक असुविधा होती है। इस असुविधा को दूर करने के लिए संयुक्त व्यञ्जनों की कुछ विशेष परिस्थितियों में किसी 'स्वर' वर्ण का आगम किया जाता है, जिसे 'स्वरभक्ति' कहते हैं। प्रातिशाख्यों के अनुसार परवर्ती व्यञ्जन के साथ रेफ का संयोग होने पर संयुक्त व्यञ्जनों के मध्य में एक अति ह्रस्व 'स्वर' वर्ण का उच्चारण किया जाता है जिसे 'स्वरभक्ति' कहते हैं।

'स्वरभक्ति' का शाब्दिक अर्थ है 'स्वर' वर्ण के द्वारा विभक्त करना। भक्ति शब्द विभक्त करना अर्थ वाली 'भज्' धातु से निष्पन्न हुआ है। रेफ के बाद ऊष्म वर्ण: आने पर रेफ के उच्चारण में असुविधा होती है। इस असुविधा को दूर करने के लिए रेफ और 'ऊष्म' वर्ण के मध्य में एक अति 'ह्रस्व' 'स्वर' वर्ण का आगम होता है। जिससे संयुक्त व्यञ्जन दो भागों में विभक्त हो जाते हैं इसलिए इसे 'स्वरभक्ति' कहते हैं। कृष्णयजुर्वेदप्रातिशाख्य के भाष्यकार सोमाचार्य (त्रिभाष्यरत्नकार) के अनुसार स्वरभक्ति का अर्थ है- स्वर की भक्ति - भाग - स्वर - वर्ण का अंश। भक्ति-भाग-अवयव। जो इस रेफ के समान उच्चारणावयव वाला स्वर है उसकी भक्ति होती है अर्थात् स्वरभक्ति रेफ के समान उच्चारणावयव वाले 'स्वर' वर्ण का अंश होती है। ऋकार रेफ के समान धर्म वाला स्वर है क्योंकि रेफ के समान ऋकार का उच्चारणावयव भी जिह्वा का अग्रभाग है और ऋकार रेफ के समान सुनाई पड़ता है अत: स्वरभक्ति ऋकार का अंश होती है - ***स्वरस्य भक्ति:, स्वरभक्ति:। भक्ति: भाग: अवयव: एकदेश इति यावत्। योऽस्य रेफस्य समानकरण: स्वर: तद्भक्ति: स्यात्। ऋकार रश्चास्य जिह्वाग्रकरणत्वेन रश्रुत्या च समानधर्म:। एतदुक्तं भवति - ऋकारस्यावयवो भवतीव्यर्थ:।***[1] कृष्णयजुर्वेद-प्रातिशाख्य के ही दूसरे भाष्यकार गोपालयज्वा ने अपने वैदिकाभरण नामक भाष्य में स्वरभक्ति का निर्वचन करते हुए कहा है- भक्ति अर्थ है

Vijana Bharati

धर्म, क्योंकि यह प्राप्त किया जाता है। स्वर वर्ण के समान धर्म है जिसका वह, स्वर वर्ण के धर्मवाली स्वरभक्ति होती है- ***भज्यत इति भक्तिः धर्मः। स्वरः एव भक्तिर्यस्य स तथोक्तः स्वरधर्मो भवतीति यावत्।***[३] ऋग्वेद-प्रातिशाख्य के भाष्यकार उवट ने भी स्वरभक्ति को स्वर का प्रकार बतलाया है- ***स्वरभक्तिः स्वरप्रकार इत्यर्थः।***[३]

स्वरभक्ति में स्वर वर्ण का कितना अंश होता है यह बतलाने के लिए सोमयार्थ ने अपने त्रिभाष्यरत्न नामक भाष्य में आचार्य वररुचि के मत को प्रस्तुत किया है- ऋकार के आदि में अणु मात्रा (१/४ अंश) स्वर की है, मध्य में रेफ की अर्द्ध मात्रा (१/२) तथा अंत में अणु मात्रा (१/४ अंश) स्वर की है, तात्पर्य यह है कि एक मात्रा काल वाले ऋकार के आदि वाले स्वर का भाग अणु (१/४ = चौथाई)मात्रा काल वाला है मध्य में स्थित रेफ अर्द्ध (१/२) मात्रा काल वाला है और अंत में स्थित स्वर का भाग अणु (१/४ = चौथाई) मात्रा काल वाला है यह ऋकार का स्वरूप है। ऋकार में मध्य में रेफ की आधी मात्रा विभक्त होने पर वे दोनों भाग पूर्ववर्ती और परवर्ती प्रत्येक अणु मात्रा (१/४ = चौथाई स्वर भाग) स्वरभक्ति नाम को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार स्वरभक्ति का उच्चारण काल आधी मात्रा है।

सभी प्रातिशाख्यकारों ने 'स्वरभक्ति' का विधान किया है। ऋग्वेद प्रातिशाख्यकार आचार्य शौनक के अनुसार 'स्वर' वर्ण पूर्व में होने पर और व्यञ्जन बाद में होने पर रेफ से बाद में ऋवर्णात्मक स्वरभक्ति होती है- ***रेफात्स्वरोपहिताद्व्यञ्जनोदयादृकारवर्णा स्वरभक्तिरुत्तरा।***[४] तात्पर्य यह है कि रेफ के पूर्व में स्वर वर्ण और बाद में व्यञ्जन होने पर रेफ और परवर्ती व्यञ्जन के मध्य में एक अति ह्रस्व स्वर्ण वर्ण का उच्चारण किया जाता है। इस अतिह्रस्व स्वर वर्ण को ही स्वरभक्ति कहते हैं। इस स्वर वर्ण के आगम से रेफ और परवर्ती व्यञ्जन का संयोग मिट जाता है और उच्चारण में सौकर्य आ जाता है। यथा- ***''यदद्य कर्हि कर्हिचित्''*** 'कर्हि' पद में रेफ के पूर्व में स्वर वर्ण अकार है और बाद में व्यञ्जन हकार है। रेफ और हकार का उच्चरण करना कठिन है। अतः रेफ और हकार के मध्य में एक ऋवर्णात्मक 'अतिह्रस्व' स्वर वर्ण का उच्चारण किया जाता है। इस प्रकार 'कर्हि' का उच्चरण कर् (ऋ) हि किया जाता है किंतु ग्रन्थों में इसे लिखा नहीं जाता है। "अर्चन्त्यर्कमर्किणः" इस उदाहरण में स्वरभक्ति के तीन स्थल हैं - अर् (ऋ) चन्त्यर् (ऋ) कमर् (ऋ) किणः।

आचार्य शौनक के अनुसार 'सघोष' 'अभिनिधान' से बाद में भी 'स्वरभक्ति' उत्पन्न होती है। यदि बाद में 'स्पर्श' अथवा 'ऊष्म' वर्ण हो ***विच्छेदात्स्पर्शोष्मपराच्च घोषितः।***[५] यथा- "अर्वाग् देवाः" यहाँ अभिनिहित[६] गकार के बाद में एक अतिह्रस्व 'स्वर' वर्ण (अ = स्वरभक्ति) का आगम होता है।

आचार्य शौनक ने ऋग्वेदप्रातिशाख्य में स्वरभक्ति के स्थल के विषय में अनेक आचार्यों के मतों को प्रस्तुत किया है जो अधोलिखित हैं-

१. आचार्य गार्ग्य के अनुसार 'यम'[७] के बाद में नासिका स्थान वाली 'स्वरभक्ति' होती है ***यमात्रासिक्या स्वरभक्तिरुत्तरा।***[८] यथा ***''पलिक्नीरित्''; ''परिज्माँनमिव''*** - इन उदाहरणों में ककार और जकार अपने-अपने यमों को प्राप्त हो जाते हैं। इन यमों के बाद में नासिका स्थानवाले 'अतिह्रस्व' 'स्वर' वर्णों (स्वरभक्ति) का आगम हो जाता है।

२. कतिपय आचार्य सर्वत्र स्वरभक्ति का अभाव मानते हैं - ***सर्वत्रैके स्वरभक्तेरभावम्।***[९] इन आचार्यों के अनुसार 'स्वरभक्ति' रूप आगम कहीं भी नहीं होता है- न पद के मध्य में और न भिन्न-भिन्न पदों में; न रेफ से बाद में और न सघोष अभिनिधान से बाद में।

३. कतिपय आचार्य रेफपूर्व (रेफ है पूर्व में जिसके उस) 'स्वरभक्ति' को विद्यमान मानते हैं। रेफोपधमपरे विद्यमानाम्।[१०] इन आचार्यों के अनुसार केवल रेफ से बाद में 'स्वरभक्ति' का आगम होता है, अन्यत्र नहीं। यथा- कर्हि।

४. कतिपय आचार्य अद्विरुक्त 'ऊष्म' वर्ण बाद में होने पर 'स्वरभक्ति' की सत्ता को मानते हैं - ***अक्रान्तोष्मप्रत्ययाभावमेके।***[११] यथा- ***''कर्हि''***, ***अदर्शि***। इन आचार्यों के अनुसार "वर्ष्यान्" और "अदर्श्यायती" में 'स्वरभक्ति' नहीं होती है क्योंकि रेफ से बाद में द्विरूक्त (द्वित्व को प्राप्त) 'उष्म' वर्ण (षकार तथा शकार) विद्यमान हैं।

ऋग्वेदप्रतिशाख्य के अनुसार 'स्वरभक्ति' दो प्रकार की होती है- (१) दीर्घ और (२) ह्रस्व।

१. दीर्घ स्वरभक्ति- 'ऊष्म' वर्ण बाद में होने पर 'स्वरभक्ति' दीर्घ होती है- ***द्राघीयसी तूष्मपरा।***[१२] यथा- (१) कर्हि (२) अदर्शि।

२. ह्रस्व स्वरभक्ति- 'ह्रस्व स्वरभक्ति' दो स्थितियों में होती है- (१) रेफ के बाद 'ऊष्म' वर्ण से भिन्न 'व्यञ्जन' हो यथा-

Vimana Bharati

'अर्चन्त्यर्कमर्किणः' यहाँ तीनों स्थलों पर ह्रस्व स्वरभक्ति है; क्योंकि तीनों ही स्थलों में 'ऊष्म' वर्ण से अन्य स्पर्श वर्ण (क्रमश, चकार, ककार और ककार) हैं।

३. द्वित्व को प्राप्त 'ऊष्म' वर्ण बाद में होने पर 'स्वरभक्ति' 'ह्रस्व' होती है- ***इतरा क्रम।***[१३] यथा- (१) ***वष्ट्यान्*** (२) ***अदश्श्र्यायती*** - इन दोनों ही स्थलों में द्वित्व को प्राप्त 'ऊष्म' वर्ण (क्रमशः षकार और शकार) हैं। अतः दोनों ही स्थलों में 'ह्रस्व' स्वरभक्ति है।

कृष्णयजुर्वेदप्रातिशाख्य केवल 'रेफ' और 'ऊष्म' वर्ण का संयोग होने पर ही 'स्वरभक्ति' की सत्ता को स्वीकार करता है- ***रेफोष्मसंयोगे रेफस्वरभक्ति।***[१४]

रेफ 'स्वरभक्ति' से प्रातिशाख्यकार का तात्पर्य रेफ के समान धर्मवाली 'स्वरभक्ति' से है। रेफ के समान धर्म वाला स्वर ऋ है अतः ऋवर्णात्मक 'स्वरभक्ति' होती है। यथा- 'बर्हि' यहाँ रेफ के बाद 'ऊष्म' वर्ण हकार है अतः दोनों के मध्य में एक अतिह्रस्व स्वर (ऋ) का उच्चारण किया जाता है। इस प्रकार 'बर्हि' का उच्चारण बर् (ऋ) हि किया जाता है। कृष्णयजुर्वेद-प्रातिशाख्य के भाष्यकारों ने 'लकार' और 'ऊष्म' वर्ण के संयोग को भी स्वरभक्ति के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है यथा- "माल्हा" यहाँ 'लकार' और 'ऊष्म' वर्ण 'हकार' के योग में 'स्वरभक्ति' है।

२. "सहस्रवल्शाः" यहाँ लकार और 'ऊष्म' वर्ण शकार के योग में स्वरभक्ति है। रेफ और लकार में अभेद सम्बन्ध होने के कारण ही भाष्यकारों ने 'लकार' और 'ऊष्म' वर्ण के संयोग को 'स्वरभक्ति' के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है। ऋग्वेदप्रातिशाख्य के भाष्यकार उवट ने भी 'लकार' और ऊष्म वर्ण के संयोग में 'स्वरभक्ति' को माना है - ***सा स्वरभक्तिः पूर्व रेफं लकारं वा भजते। रेफादुत्तरा रेफ सदृशी भवति लकारादुत्तरा लकार सदृशी भवति।***[१५] अर्थात् स्वरभक्ति पूर्ववर्ती रेफ और लकार से सम्बद्ध होती है। रेफ से बाद वाली रेफ के सदृश होती है और लकार से बाद वाली लकार से सदृश होती है। इस प्रकार 'माल्' और 'सहस्रवल्शाः' में स्वरभक्ति लकार के सदृश है।

यहाँ उल्लेखनीय हैं कि कृष्णयजुर्वेदप्रातिशाख्य में वर्णमाला के अन्तर्गत स्वरभक्ति की भी परिगणना की गई है। प्रातिशाख्यकार ने स्वरभक्ति का उच्चारण स्थान 'बर्स्व' (दन्तमूल के ऊपर वाला उठा हुआ स्थान) बतलाया है- ***उपसंहततरे च जिह्वाग्रमूर्कारल्कारेषु बर्स्वेषुयसँहरति। एकेषामनुस्वारस्वरभक्तयोश्च।***[१६] अन्य प्रातिशाख्यों में 'स्वरभक्ति' के उच्चारण स्थान का विधान नहीं किया गया है।

शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य में यद्यपि 'स्वरभक्ति' संज्ञा का प्रयोग नहीं कया गया है तथापि 'स्वरभक्ति'[१७] का विधान करते हुए कहा गया है कि रेफ तथा लकार के बाद 'ऊष्म' वर्ण हो अथवा 'स्वर' वर्ण हो तो सर्वत्र (दोनों के मध्य में क्रमशः ऋ और ऌ (स्वरों की आंशिक ध्वनि) का आगम होता है- रलावृलुवर्णामयामूष्मणि स्वरोदये सर्वत्र।

अथर्ववेदप्रातिशाख्य के अनुसार 'स्वर' है बाद में जिसके ऐसा 'ऊष्म' वर्ण बाद में होने पर रेफ के बाद में अकार से आधी मात्रा (१/२) काल वाली अथवा चौथाई (१/४) मात्रा काल वाली 'स्वरभक्ति' उत्पन्न होती है। 'ऊष्म' व्यतिरिक्त व्यञ्जन से पहले और रेफ से बाद में आने वाली 'स्वरभक्ति' (१/४ या १/८) मात्रा काल वाली होती है- ***रेफादूष्माणि स्वरपरे सवरभक्तिकारस्यार्ध चतुर्थमित्येके अन्यस्मिन्व्यञ्जने चतुर्थमष्टमं वा।***[१८]

उपर्युक्त विवरण से ज्ञात होता है कि कृष्णयजुर्वेदप्रातिशाख्य को छोड़कर अन्य सभी प्रातिशाख्य 'रेफ' तथा 'ऊष्म' व्यतिरिक्त व्यञ्जनों का संयोग होने पर भी 'स्वरभक्ति' की सत्ता स्वीकार करते हैं किन्तु कृष्णयजुर्वेदप्रातिशाख्य केवल रेफ और ऊष्म के संयोग में ही 'स्वरभक्ति' को मानता है।

'स्वरभक्ति' का उच्चारण शाखा भेद से ऋकार, अकार, इकार, उकार, एकार आदि पूर्ववर्ती अथवा परवर्ती स्वरों के आधार पर किया जाता है। किन्तु मुद्रित ग्रन्थों में इसे दिखाया नहीं जाता है। ऋग्वेदप्रातिशाख्य तथा कृष्णयजुर्वेदप्रातिशाख्य के अनुसार 'स्वरभक्ति' पूर्ववर्ती स्वर का अङ्ग होती है।१९

सन्दर्भ :

१. त्रिभाष्यरत्न - २१/१५

२. वैदिकाभरण - २१/१५

३. उवट भाष्य - १/३२

४. ऋ.प्रा. - ६/४६

५. ऋ.प्रा. - ६/४७

६. दो समीपवर्ती संयुक्त व्यंजनों में से प्रथम 'व्यञ्जन' को द्वितीय व्यञ्जन से कुछ पृथक् करके प्रथम 'व्यंजन' की ध्वनि को कुछ दबाकर उसका

Vijnana Bharati

अस्पष्ट उच्चारण करना 'अभिनिधान' कहलाता है। ऋग्वेदप्रातिशाख्य ६/१७ के अनुसार वर्ण का अवरोध और वर्ण की ध्वनि (श्रुति) को दबाना (संस्वरण) 'अभिनिधान' कहलाता है।

७. 'यम' संयोगविषयक उच्चारण - वैशिष्ट्य है। 'यम' का शाब्दिक अर्थ है 'जोड़ा' अथवा जोड़ें में से एक। 'अननुनासिक' तथा 'अनुनासिक' 'स्पर्श' वर्णों के मध्य में आगम होने से एक 'अननुनासिक' 'स्पर्श' वर्ण के स्थान पर दो वर्ण (जोड़ा) हो जाते हैं। इस जोड़े में से द्वितीय को 'यम' कहते हैं। ऋग्वेदप्रातिशाख्य ६/२९; कृष्णयजुर्वेदप्रातिशाख्य २१/१२-१३; शुक्लयजुर्वेदप्रातिशाख्य ४/१६३; अथर्ववेदप्रातिशाख्य १/९९।

८. ऋ.प्रा. - ६/३६

९. ऋ.प्रा. - ६/५०

१०. ऋ.प्रा. - ६/५१

११. ऋ.प्रा. - ६/५२

१२. ऋ.प्रा. - ६/४८

१३. ऋ.प्रा. - ६/४९

१४. ऋ.प्रा. - २१/१५

१५. ऋ.प्रा. - ६/५२ (उवट भाष्य)

१६. कृ.प्रा. - २/१८-१९

१७. शु.यजु.प्रा. - ४/१७

१८. अ.प्रा. - १/१२०

१९. स्वरभक्तिः पूर्वभागक्षराङ्गम्। ऋ०प्रा० १/३२

अवसितं पूर्वस्य अनुस्वारः स्वरभक्तिश्च। कृ०प्रा० २१/३, ६

Vijnana Bharati